International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 06-10

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 06-10
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-11-2016
Accepted: 04-12-2016

महेश चन्द्र शर्मा
शोध छात्र संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence
महेश चन्द्र शर्मा
शोध छात्र संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जैनेन्द्र व्याकरण : एक परिचय

महेश चन्द्र शर्मा

प्रस्तावना

देवनन्दि द्वारा विरचित जैनेन्द्र व्याकरण आठ व्याकरणों में गिना जाता है। इस सन्दर्भ में बोपदेव ने कहा है-

इन्द्रश्चन्द्रःकाशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिनीयमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ।।[1]

जैनेन्द्र व्याकरण पाणिनीय व्याकरण के बाद लिखा गया है लेकिन यह जैन व्याकरणों में सबसे प्राचीन व्याकरण है। जैन लेखक इन्हें पूज्यपाद देवनन्दि नाम से अभिहित करते हैं । इनका दूसरा नाम जैनेन्द्रबुद्धि है[2]। ये जैन धर्म के प्रमाणिक आचार्य हैं। जैन धर्मावलम्बी होने के कारण इन्होंने स्वर और वैदिक प्रकरणों का विधान नहीं किया है। वर्तमान में जैनेन्द्र व्याकरण के दो संस्करण प्राप्त होते हैं – १. औदिच्य संस्करण २. दाक्षिणात्य संस्करण। औदिच्य संस्करण में सूत्र संख्या ३००० है। इस पर अभयनन्दि ने जैनेन्द्रमहावृत्ति नामक टीका लिखी है तथा श्रुतकृति ने 'पञ्चवस्तु' नामक प्रक्रियाग्रन्थ की रचना की है। प०वंशीधर ने 'जैनेन्द्रप्रक्रिया' ग्रन्थ लिखा है। दाक्षिणात्य संस्करण में सूत्र संख्या ३७०० है। इस परगुणनन्दि ने शब्दार्णव टीका लिखी है और सोमदेवसूरि ने 'शब्दार्णव चन्द्रिका' नामक लघुवृति लिखी है।

उल्लेखनीय है कि औदिच्य संस्करण पर अभयनन्दि ने महावृत्ति लिखी है यह ही मूल पाठ है, क्योंकि गुणनन्दि ने शब्दार्णव में जैनेन्द्र की त्रुटियों को पूर्ण करने के लिये ७०० अधिक सूत्रों की रचना की है, जो पहले सूत्र पाठ से भिन्न है। औदिच्य संस्करण पाणिनीय सूत्रपाठ के समान है।

जैनेन्द्र व्याकरण की विशेषताएँ

१. **प्रत्याहार सूत्र-**जैनेन्द्र व्याकरण में प्रत्याहार सूत्रों का उल्लेख नही किया गया है, किन्तु जैनेन्द्र महावृत्ति के सूत्र स्वेऽकोदीः ४.३.८८ सूत्र से अक्, अणुदित्

[1] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग) पृ०सं०- ६४

[2] यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो बुद्ध्या महत्ता स जिनेन्द्रबुद्धिः ।
श्री पूज्यपादोऽजनिदेवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदियम् ।। स्रवणवेल्गोल के शिलालेख न०४०

स्वस्यामानाऽभाव्योऽतपरः १.१.७२ सूत्र से अण्, अदेङेप् १.१.१६ सूत्र से एङ्, एच्चैप् ४.३.७६ सूत्र से ऐच्, अकालोऽच् प्र–दी–पः१.१.११ सूत्र से अच्, हलोऽनन्तराःस्फः १.१.३ सूत्र से हल् आदि प्रत्याहार का विधान किया गया है। पाणिनीय प्रत्याहार विधायक सूत्र ' आदिरन्त्येन सहेता १.१.७१' के स्थान पर देवनन्दि ने ' अन्त्येनेतादि १.१.७३' सूत्र का प्रयोग किया है। इसलिये कहा जा सकता है कि देवननन्दि ने पाणिनीय प्रत्याहार सूत्रों को यथावत ग्रहण किया है।

२. **अनुबन्ध -**अनुबन्धों का प्रयोग पाणिनीय अष्टाध्यायी की अन्यतम विशेषता है। इनके प्रयोग से सूत्रों के लाघवीकरण में सहायता होती है। देवनन्दि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के समान अनुबन्धों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। इन्होंने पाणिनि का अनुकरण करते हुए 'इत्' संज्ञाका प्रयोग किया है। इत्संज्ञा के लिए पाणिनि ने उपदेशेऽजनुनासिक इत् १.३.२, हलन्त्यम् १.३.३, न विभक्तौ तुस्मा १.३.४, आदिर्ञिटुडुवः १.३.५, षःप्रत्ययस्य १.३.६, चुटु १.३.७, लशक्वतद्धिते १.३.८ तथा तस्यलोपः १.३.९ इन आठ सूत्रों का विधान किया है, किन्तु देवनन्दि ने पाणिनीय के इत्संज्ञक विधान करने वाले आठ सूत्रों के स्थान पर मात्र एक 'कार्यर्थोऽप्रयोगीत १.२.३' सूत्र द्वारा इत् संज्ञा का विधान किया है। यह देवनन्दि की मौलिक विशेषता है। अनुबन्धों के अनेक प्रयोजन होते हैं । देवनन्दि के अनुसार 'इ' अनुबन्ध का प्रयोग 'इदिद्धोर्नुम् ५.१.३' सूत्र से 'नुम' आगम की सूचना देता है। 'उगित्' शब्दों से सर्वनाम स्थान परे रहते 'उगिदचां धेऽधोः ५.१.४९' सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। प्रत्ययों में 'क' अनुबन्ध ' क्किङति १.१ १९' सूत्र से 'इक्' के स्थान में प्राप्त गुण वृद्धि का निषेध करता है।

इसी प्रकार जैनेन्द्र व्याकरण में 'ख' अनुबन्ध का प्रयोग ' मुमचः ४.३.१७७' सूत्र से 'मुम्' आगम की सूचना देता है। ' ञ्' अनुबन्ध का प्रयोजन 'ञ्णित्यचः ५.३.२' सूत्र से अनन्त अङ्ग की वृद्धि का विधान करता है। 'ङ्' अनुबन्ध का प्रयोग 'टेः ४.४.१२९' सूत्र से 'टि' लोप की सूचना देता है। 'ट्' अनुबन्ध का प्रयोग 'टिड्ढाणञ्ठण्ठञ्क्वरपः १.३.१८' सूत्र से स्त्रीलिङ् में 'ङीप्' प्रत्यय का विधान करता है। 'प' अनुबन्ध का प्रयोग 'पिति कृति तुक.४.३.५९ सूत्र से 'तुक' आगम की सूचना देता है।

जैनेन्द्र व्याकरण में स्वर व वैदिक सूत्रों का अभाव होने के कारण पाणिनीय अष्टाध्यायी में प्रयुक्त स्वर व वैदिक सूत्रों से सम्बन्धित प्,त्,म्,च्,क्,ल् तथा र् अनुबन्धों का प्रयोग नहीं हुआ है। अष्टाध्यायी में जिन स्थलों में प्,त्, तथा च् आदि का प्रयोग स्वर की दृष्टि से न होकर अन्य किसी प्रयोजन से किया गया है उन्हें देवनन्दि ने उसी रूप में ग्रहण किया है।

१. **पारिभाषिक संज्ञाएँ**-देवनन्दि की अधिकांश संज्ञाएँ एकाक्षरी हैं। इसमें शब्दकृतलाघव को अधिक महत्त्व दिया गया है। देवनन्दि द्वारा पाणिनि व्याकरण से कुछ संज्ञायें अक्षरसः ग्रहण की गयी हैं-संख्या, सर्वनाम, ति, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, इत्, पद, अपादान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्ता, हेतु, द्वन्द्व तथा कृत् आदि ।

देवनन्दि द्वारा पाणिनि संज्ञासूत्रों का आदि अक्षर लेकर बनायी संज्ञाएँ

पा०संज्ञा – सूत्र	जै०संज्ञा – सूत्र
दीर्घ – अकः सवर्णे दीर्घः ६.१	दी – १.१.१३
एकवचन – द्वयोकयोर्द्विवचनेकवचने १.४.२२	एक – एकद्विबहुवश्चैकशः१.२.१५५
द्विवचन – द्वयोकयोर्द्विवचनेकवचने १.४.२२	द्वि – एकद्विबहुवश्चैकशः १.२.१५५
बहुवचन – बहुषु बहुवचनम् १.४.२१	बहु – एकद्विबहुवश्चैकशः १.२.४५
निपात –प्राग्रीश्वरान्निपाताः १.४.५६	नि – निः१.२.१२७

पाणिनि संज्ञा सूत्रों से अन्तिम अक्षर लेकर बनायी संज्ञाएँ

पा०संज्ञा–सूत्र	जै०संज्ञासूत्र
गुरू – संयोगे गुरू १.४.११	रू –दीः १.२.१०१
गति – गतिश्च१.४.५९	ति –१.२.१३१
आत्मनेपद – तङानावात्मनेपदम् १.४.९९	द – १.२.५१
तत्पुरूष –तत्पुरुषः२.१.२१	ष – १.३.१९
कर्मधारय –तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १.२.४२	य –१.३.४४

पाणिनि संज्ञासूत्रों से मध्यम अक्षर लेकर बनायी संज्ञाएँ

पा० संज्ञा – सूत्र	जै०संज्ञा सूत्र
प्रत्यय –प्रत्ययः३.१.१	त्य – २.१.१
आम्रेडित – तस्य परमाम्रेडितम् ८.१.२	म्रि– ५.३.२
तद्राज – ते तद्राजाः ४.१.१७२	द्रि – ४.२.९

पाणिनि संज्ञा सूत्रों से पहला व अन्तिम अक्षर लेकर बनायी संज्ञाएँ

पा०संज्ञा – सूत्र	जै० संज्ञा –सूत्र
प्लुत – ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १.२.२७	प – अकालोऽच् प्र–दी–पः १.१.१३
धातु – भूवादयो धातवः १.३.१	धु – भूवादयो धुः १.२.१

पाणिनि से भिन्न संज्ञाएँ

पाणिनीय संज्ञा शब्द के स्थान पर 'संज्ञाःखुः १.१.२९' सूत्र से खु, अकर्मक के स्थान पर 'अकर्मको धिः १.२.२' सूत्र से धिः, उत्तरपद के स्थान पे 'उतरपदं द्यु १.३.१०५' सूत्र से द्यु संज्ञा का प्रयोग किया गया है।

२. **सन्धि -**देवनन्दि ने चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद में सन्धिप्रकरण का विधान किया है। अष्टाध्यायी के समान ही जैनेन्द्र व्याकरण में सन्धि तीन प्रकार की है। 1.स्वरसन्धि । 2. हल् सन्धि । 3. विसर्ग सन्धि । देवनन्दि ने सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत पाणिनीय कुछ सूत्रों में परिवर्तन किये हैं । जैसे–इको यणचि ६.१.७७ के स्थान पर अचीकोयण् ४.३.६५, अदेङ् गुणः १.१.२ के स्थान पर अदेङेप् १.१.१६, आद्गुणः६.१.८७ के स्थान पर आदेप् ४.३.७५, वृद्धिरादैच १.१.१ के स्थान पर एच्चैप् ४.७६, अकः सवर्णे दीर्घः ६.१.१०१ के स्थान पर स्वेऽकोदी ४.३.८१, ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् १.१.११ के स्थान पर इदूदेदद्विर्दिः ५.३.९२ आदि । यहाँ हम देख सकते हैं कि देवनन्दि ने पाणिनीय सूत्रों के आदि, मध्य और अन्तिम अक्षरों में परिवर्तन करके नये सूत्र बनाये हैं, किन्तु इन सूत्रों के कार्य एक समान हैं ।

३. **कारक एवं विभक्ति -** देवनन्दि ने प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद में कारक एवं विभक्ति प्रकरणों का विवेचन किया है। इन्होंने अष्टाध्यायी की तरह छः कारकों को परिभाषित किया है। जैसे – कर्ता – स्वतन्त्रः कर्ता १.२.१२४, कर्म – कर्त्राप्यम् १.२.११९ , करण – साधकतमं करणः १.२.११३ , सम्प्रदान – कर्मणोपेयःसम्प्रदानम् १.२.११०, आपादान – ध्यापायेध्रुवमपादानम् १.२.१०९, अधिकरण– आधारोऽधिकरणः १.२.११५ । इन्होंने विभक्ति के स्थान में विभक्ती १.२.५७ ते विभक्त्यः ४.१.९१ सूत्रों में विभक्ती शब्द का प्रयोग किया है। जैनेन्द्र व्याकरण में अष्टाध्यायी के समान ही सात विभक्तियों का प्रयोग किया गया है, किन्तु देवनन्दि ने पाणिनि की विभक्तियों के नाम परिवर्तन किये हैं । जैसे –

पाणिनीय विभक्ति	जैनेन्द्र विभक्ती
प्रथमा-प्रातिपदिकार्थलिङ्परिमाणवचनमात्रे प्रथमा २.३.४६	वा –मिङैकार्थे वाः १.४.५४
द्वितीय – कर्मणि द्वितीया २.३.२	इप् – कर्मणीप् १.४.२
तृतीया – कर्तृकरणयोस्तृतीया २.३.१८	भा – कर्तृकरणेभा १.४.२९
चतुर्थी – चतुर्थी सम्प्रदाने २.३.१३	अप् – सम्प्रदानेऽप् १.४.२३
पंचमी – अपदाने पंचमी २.३.२८	का – काऽपादाने १.४.२३
षष्टि – षष्टी शेषे २.३.५०	ता – ता शेषं १.४.५७
सप्तमी – सप्तम्यधिकरणे च २.३.३६	ईब् – ईबधिकरणे च १.४.४४
सम्बोधन –सम्बोधने च २.३.४७	सम्बोधन – सम्बोधनेऽपि मिङर्थे वा १.४.५४

४. **समास -** जैनेन्द्र व्याकरण में समासप्रकरण का विधान प्रथम अध्याय के तृतीय पाद में किया गया है। देवनन्दि ने समास को सः १.३.२, अव्यय को झिः १.३.५, अव्ययीभाव को हः १.३.४, तत्पुरुष को षम् १.३.१९, कर्मधारय को यः १.३.४७, द्विगु को रः १.३.४७ तथा बहुव्रीहि को बम् १.३.८६ कहा है। जैनेन्द्र व्याकरण में अष्टाध्यायी का अनुकरण करते हुए समास को छ भेदों में परिभाषित किया गया है।

1 – हः(अव्ययीभाव)– झि विभक्त्यभ्यासद्धर्यर्थाभावातीत्यसंप्रतिव्यृद्धिशब्दप्रभवपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौग-पद्यसंपत्साकल्यान्तोक्तौ १.३.५ सूत्र से झि

का समर्थ सुबन्त के साथ 'हसः' (अव्ययीभाव समास) होता है।

2 – षम् (तत्पुरूष) –इप् षस (द्वितीया तत्पुरुष) – इसचछ्रितातीतपतितगतात्यस्तैहः १.३.२१ सूत्र से इबन्त (द्वितीयान्त) सुबन्त का स्रितादि प्रकृति वाले सुबन्त के साथ इप् षस होता है।

भा षस (तृतीया त०) –भा गुणोक्तयाऽर्थेनोनैः १.३.२७ सूत्र से भान्त सुबन्त का गुण तदविशिष्ट द्रव्यवाचक सुबन्त के साथ भा षस होता है।

अप् षस (चतुर्थी त०) - असदर्थाथबलिहितसुखरक्षितैः १.३.३१ सूत्र से अबन्त सुबन्त का तदर्थ सुबन्त के साथ अप्षस होता है।

का षस – (पञ्चमी त०)-काभाभीः१.३.३२ सूत्र से कात्त सुबन्त के साथ का षस होता है।

ता षस – (षष्टि त०) – ता १.३.७० सूत्र से तान्त सुबन्त के साथ सुबन्त का ता षस होता है।

ईप् षस – (सप्तमी त०) –ईष्शौण्डैः १.३.३५ सूत्र से ईबन्त सुबन्त का शौण्डादि सुबन्त के साथ का षस होता है।

2.1 – यः (कर्मधारय) –विशेषणं विशेष्यणेति१.३.४७ सूत्र से विशेषण सुबन्त का समानाधिकरण विशेष्य सुबन्त के साथ यषसः होता है।

2.2 – रः (द्विगु) – संख्यादी रश्च १.३.४७ सूत्र से हृदर्थ पूर्वपद संख्यावाचक हो तो र षस होता है।

3– बम् (बहुव्रीही) –अन्यपदार्थेऽनेकं बम् ३.८३ सूत्र से अन्यपदार्थ के अर्थ में विद्यमान एक से अधिक प्रथमान्त पद से बम् षस होता है।

4 – द्वन्द– चार्थे द्वन्दः२.२.२९ सूत्र से च के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का परस्पर विकल्प से द्वन्द्व सः होता है।

तिङन्त- जैनेन्द्र व्याकरण में लोमं १.२.१४९ सूत्र से लस्यादेश की म संज्ञा का उल्लेख किया गया है। इन्होंने ' तिङन्त' के स्थान पर 'मिङन्त' शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनीय'

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ ३.४.७८' सूत्र के आदि व मध्य में सामान्य परिवर्तन कर नवीन 'मिव्वस्मस्, सिप् थस् थ, तिपतस् झीङ्, वहि महि थासां थां ध्वं, तातां झङ् २.३.१६३' सूत्र बनाया है, किन्तु प्रत्यय पाणिनि के समान हैं । जैनेन्द्र व्याकरण मे पाणिनि के सदृश हि लाघव प्रयोजन की दृष्टि से धातुओं को दस गणों में क्रमशः भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, रुधादि, तनादि, क्रियादि, चुरादि में विभक्त किया गया है। शप्, श्लुः, श्नम्, उः, श्ना आदि विकरण व्यवस्था समान है किन्तु पाणिनीय श्यन् के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण मे दिवादेःश्यः २.१.६५ सूत्र से 'श्य' विकरण का प्रयोग किया है।

अनेकशेष

जैनेन्द्र व्याकरणमें स्वर व वैदिक सूत्रों का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें एकशेष प्रकरण को महत्व नहीं दिया गया है। इन्होंने स्वभाविकत्वादभिधानस्य एकशेषानारम्भः १.१.१०० सूत्र लिखकर इस प्रकरण को समाप्त किया है। यही कारण है कि जैनेन्द्र व्याकरण को अनेकशेष के नाम से जैन ग्रन्थों में निर्दिष्ट किया जाताहै।

उपसंहार- जैनेन्द्र व्याकरण देवनन्दि की कृति है इसका आधार अष्टाध्यायी है। यह जैन एवं संस्कृत व्याकरणों में विशिष्ट है। देवनन्दि ने प्रत्याहार सूत्रों का उल्लेख नहीं किया है लेकिन पाणिनीय प्रत्याहार सूत्रों को यथावत ग्रहण किया है। इसमें अधिकांश सज्ञाएँ एकाक्षरी हैं । पाणिनि के समान ही इन्होंने सात विभक्तियों और छह कारकों का प्रयोग किया है। लेकिन विभक्ति के नामों में परिवर्तन किये हैं । तिङन्त के स्थान पर मिङन्त शब्द का प्रयोग किया है। श्यन् के स्थान पर श्य विकरण का प्रयोग किया है। दस गणों तथा प्रत्ययों की व्यवस्था पाणिनि के समान ही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठः (प्रकरण निर्देश समन्वितः), सं०पुष्पा दीक्षित, ज्ञान भारती पब्लिकेशन, शक्ति नगर, दिल्ली,२००९
2. जैनेन्द्र प्रक्रिया गुणनन्दि,सं० श्री लाल जैन, पन्नालालजैनमंत्री भारतीयजैनसिद्धाप्रकाशिनीसंस्था काशी, वीरनिर्वाण संवत् २४४१
3. जैनेन्द्रप्रक्रिया पं० वशीधर,प्रकाशयिता– आकलूजनिवासी श्रेणी नाथा–रङ्गजी गांधी, वीराब्द २४४४
4. जैनेन्द्र लघुवृत्तिः राजकुमार, विद्याविलास मुद्रणालय, १९२४
5. जैनेन्द्रव्याकरणम् देवनन्दि, (अभयनन्दि महावृत्ति सहितम्) सं० शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, द्वितीय संस्करण २०१३
6. शब्दार्णवचन्द्रिका सोमदेवसूरि, (जैनेन्द्रलघुवृत्ति सहितम्), सं०श्रीलाल जैन,पन्नालालजैन औदुम्बरनाम्नि मुद्रणालय काशी, ख्रीष्टाब्द १९१५

7. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास,पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणासी, १९६६
8. प्रमी, नाथुराम, जैन साहित्य और इतिहास,चौखम्बा विद्याभवन, वाराणासी, १९५६
9. मीमांसक, युधिष्ठर, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान